Original Paper

ISSN: 2321-1520

स्वतंत्रता पूर्व की हिन्दी गुजराती आलोचना

डॉ. राजेन्द्र परमार

असिस्टेंट प्रोफेसर,हिन्दी विभाग,गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद
मो-९७२३५२७४८७

भारतेन्दु युग से पहले हिन्दी आलोचना का व्यवस्थित रूप विकसित नहीं हो पाया था । रीतिकाल में संस्कृत के लक्षणग्रंथों के अनुकरण के आधार पर रीतिकालीन कवियों ने रीतिग्रंथों का निर्माण किया । परंतु इनके ग्रंथों में प्रायः उच्चकोटि की सूक्ष्म विवेचना एवं मौलिकता का अभाव है, अधिकतर संस्कृतग्रंथों का रूपांतरण ही है । फिर भी चिन्तामणि, कुलपति, श्रीपति, भिखारीदास, सेनापति आदि ने अपने ग्रंथों का निर्माण संस्कृत आलोचना ग्रंथों के आधार पर करके हिन्दी की रीतिकालीन आलोचना को रूप देने का प्रयास किया ।

पाश्चात्य शिक्षा एवं अंग्रेजी के संपर्क से भारतीय जनमानस बौद्धिक दृष्टि से जाग्रत हुआ । अतः हिन्दी में भी साहित्य की नवीन विधाओं के साथ ही साथ नवीन समीक्षा पद्धति का भी आविर्भाव हुआ, जिससे हिन्दी में नवीन काव्य सिद्धांतों, शैलियों एवं आलोचना प्रणालियों का निरुपण हुआ जो आधुनिक हिन्दी आलोचना की प्रमुख विशेषताएँ है और जिनका प्रादुर्भाव भारतेन्दु काल में हुआ । समग्रतः "पाश्चात्य साहित्य का संपर्क और बौद्धिक जागृति ही ऐसे प्रधान कारण थे, जिनसे भारतेन्दुकालीन हिन्दी समीक्षा का उद्‌भव हुआ ।'[१]

भारतेन्दु युग हिन्दी साहित्य में पुनर्जागरण का युग माना जाता है । यह पुनर्जागरण किसी एक क्षेत्र में नहीं हुआ, बल्कि सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक चेतना में एक नवीन मोड़ आया । इन सब परिस्थितियों का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ा । आधुनिक दृष्टि ने तत्कालीन साहित्य के सभी अंगों और उसकी सभी विधाओं को प्रभावित किया । भारतेन्दु युग में जैसे उपन्यास, नाटक, निबंध और 'पद्यात्मक निबन्ध' की रचना का आरम्भ हुआ, वैसे ही आलोचना का भी । भारतेन्दु युग की सबसे महत्वपूर्ण जो कोई बात हो तो वह यह कि इस युग में जिन साहित्यकारों के द्वारा नई आलोचना का सूत्रपात हुआ उनमें प्रायः सभी मुख्यतः सर्जक थे ।[२]

आधुनिक काल में हिन्दी आलोचना का प्रारंभ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से माना जाता है । भारतेन्दु युग के आलोचकों ने रीतिकाल से भिन्न नवीन परिपाटी पर आलोचना को विकसित करते हुए, हिन्दी आलोचना को एक नवीन दिशा दी । हिन्दी आलोचना को नवीन दिशा देने में अनेक पत्र-पत्रिकाओं ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं । जिसमें प्रमुख हैं हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, भारत मित्र, सारसुधानिधि, ब्राह्मण आदि पत्रिकाओं में विविध विषयों पर लिखित लेखों और टिप्पणियों से हिन्दी आलोचना की दृष्टि विकसित होती हुई दिखलाई पड़ती है । भारतेन्दु युगीन हिन्दी आलोचना में जिन आलोचकों का प्रमुख योगदान रहा है उनमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रतापनारायण मिश्र आदि के नाम महत्त्वपूर्ण है ।

मध्यकाल के रीति ग्रंथों की काव्य तत्व और रस चर्चा के बाद भारतेन्दु युग में गद्य के विकास के साथ आलोचना

के क्षेत्र में नये विचारों का आगमन होता है । प्रतापनारायण मिश्र आदि ने भी समीक्षाएँ की थीं परंतु बालकृष्ण भट्ट एवं बदारीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का हिन्दी आलोचना की नींव को मजबूत बनाने में विशेष योगदान है । पुस्तक समीक्षा की गंभीरता एवं गुण-दोष के बारे में लगभग वस्तुपरक दृष्टि भारतेन्दु युगीन आलोचना की विशिष्ट पहचान है ।

भारतेन्दु युग में हिन्दी आलोचना की जो स्थिति थी द्विवेदीयुग में आकर उसमें कुछ परिवर्तन एवं विकास हुआ । भारतेन्दु युग में रचनाकारों का मूल उद्देश्य समाज सुधार, राष्ट्रीयता एवं देशप्रेम के द्वारा तत्कालीन समाज में जनजागृति लाना था । इसलिए इस युग के रचनाकारों के द्वारा हिन्दी आलोचना का प्रारंभ तो हुआ, पर उसे सही दिशा नहीं मिल पाई । भारतेन्दु युगीन आलोचकों ने आलोचना की जो नींव डाली थी उसे विकसित करने का काम द्विवेदीयुगीन आलोचकों ने किया । द्विवेदीयुगीन आलोचकों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा, कृष्णबिहारी मिश्र और लाला भगवानदीन आदि का नाम महत्त्वपूर्ण हैं ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी बहुभाषाविद विद्वान आलोचक थे । भारतेन्दु युगीन आलोचना में आलोचना के जो तत्व थे उसे विकसित करने का काम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ही किया । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भारतेन्दु युगीन परंपरागत शास्त्रीय मूल्यों में युगीन परिवर्तन करते हुए उसे युग की आवश्यकताओं के साथ जोड़ा । आधुनिक दृष्टि के कारण उन्होंने साहित्य क्षेत्र में फैली मध्ययुगीन वैचारिक जड़ता को उखाड़ फेंकने का महत्वपूर्ण काम किया । इसके विपरीत मिश्रबंधुओं की आलोचना में रूढ़ पद्धति का प्रभाव दिखाई देता है ।[3] हिन्दी आलोचना में तुलनात्मक आलोचना का श्रीगणेश करते हुए मिश्रबंधुओं ने गुण-दोष वाली विवेचन पद्धति को अपनाया । तुलना पर ही ध्यान केन्द्रित करने के कारण उनकी आलोचना में अनेक दोष पाए जाते हैं । हिन्दी आलोचना में मिश्रबंधुओं ने जिस तुलनात्मक आलोचना का सूत्रपात किया था, उसका व्यवस्थित रूप पद्मसिंह शर्मा की आलोचना में देखा जा सकता हैं । लाला भगवानदीन और कृष्णबिहारी मिश्र भी इसी परंपरा के आलोचक हैं ।

द्विवेदी युगीन हिन्दी आलोचना भारतेन्दु युग का विकास तो है ही, इस दौर में प्राचीन परंपरा और आधुनिक समय के दबाव को आलोचकों ने महसूस किया । इसी के साथ मिश्रबंधु, पद्मसिंह एवं लाला भगवानदीन जैसे विद्वानों ने रचना के गुण-दोष में अपनी प्रतिभा को खपा दिया । यह सच है कि रचना और रचनाकारों के प्रति उनकी आसक्ति थी, इस कारण उनके तथ्य और तर्क वस्तुपरक नहीं कहे जा सकते, लेकिन काव्य के गहन अध्ययन और साहित्य के प्रति उनकी निष्ठा के बारे में दो मत नहीं हो सकते । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदर दास जैसे आलोचकों ने परंपरित काव्यसिद्धांतों के साथ रचनाकार के व्यक्तित्व एवं परिस्थितियों का अध्ययन भी रचना के मूल्यांकन में महत्त्वपूर्ण माना, यह नया प्रस्थान था और भारतेन्दु युगीन आलोचना का विकास भी ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी के युग प्रवर्तक आलोचक हैं । उनके आगमन से हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना का नया रुप निर्मित होता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पूर्व हिन्दी आलोचना पुस्तक के गुण-दोष दर्शन तक सीमित थी । उन्होंने एक ऐसी नवीन आलोचना प्रणाली विकसित की जो देश और काल से मेल खा सके और दूसरी भाषाओं के साहित्यालोचन की कोटि में रखी जा सके । उन्होंने नवीन आलोचना सिद्धांतों को विकसित करते हुए हिन्दी आलोचना को एक नई अप्रत्याशित ऊँचाई पर पहुँचाने का काम किया । उनमें साहित्य को देखने समझने की असाधारण शक्ति थी ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना का सैद्धांतिक आधार भारतीय रसवाद है । उन्होंने इस रस दृष्टि को ही काव्य की कसौटी माना । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी आलोचना के लिए भारतीय काव्यशास्त्र का आधार लिया, पर उसकी व्याख्या अपने ढंग से की । वे साहित्य में रस के हिमायती थे । उनका सैद्धांतिक ग्रंथ 'रस मीमांसा' है । इस ग्रंथ में उन्होंने रस की जो व्याख्या प्रस्तुत की है, वह संस्कृत काव्यशास्त्र की नकल न होकर उसमें उनकी

मौलिकता के दर्शन होते हैं । वे हिन्दी के पहले आलोचक हैं, जिन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र की अतल गहराईयों में प्रवेश करके उसकी महत्ता, सारवत्ता, व्यापकता और उपयोगिता के प्रति पूर्ण विश्वास व्यक्त किया । शुक्लजी ने अपने रस सिद्धांत में पश्चिम की विकसित आलोचना के कुछ तत्वों का समाहार कर लिया और उसमें सामाजिक व्यापकता के साथ मनोवैज्ञानिक गहराई को पहचानने, परखने की क्षमता का भी विकास किया । आचार्य शुक्ल की आलोचना में पूर्व और पश्चिम का विरोध नहीं दिखाई देता इसका मुख्य कारण उनके विचारों की मौलिकता है । वे केवल उन्हीं वस्तुओं को ग्रहण करते थे जो साहित्य संबंधी उनकी मान्यताओं को बल प्रदान करनेवाली होती थी ।[४] हिन्दी आलोचना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए उसे व्यावहारिक साहित्य की कसौटी पर कसकर ही साहित्य में लागू किया । हिन्दी के मौलिक समीक्षा शास्त्र की नींव रखने एवं उसे दृढ़ करने में उनकी भूमिका एक युगप्रवर्तक आचार्य की रही है ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने साहित्यिक सिद्धांतों को व्यावहारिक आलोचना पर लागू करते हुए उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास और जायसी के काव्य का मूल्यांकन किया । उनकी सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना की विशेषता यह है कि वे लोकमंगल के सिद्धांत को पैमाना बनाकर कृति की आलोचना करते हैं । शुक्लजी ने सैद्धांतिक और व्यावहारिक आलोचना को इतना घुला मिला दिया है कि दोनों के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती ।

गुजराती साहित्य में साहित्य की विविध प्रवृत्तियों का आरंभ नर्मदयुग से माना जाता है, क्योंकि मध्यकालीन गुजराती साहित्य उसकी निश्चित परिपाटी में बंधा हुआ था । प्राचीन गुजराती साहित्य में शामल, अखो आदि कवियों ने प्रसंगोपात कवि, कविता या कविवाणी पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, किन्तु उसमें साहित्यिक चर्चा का अभाव है । इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो गुजराती साहित्य में विवेचन प्रवृत्ति का आरंभ नर्मद से माना जाता है ।

नर्मद से पहले दलपतराम ने काव्यसंबंधी कुछ विचार पद्य में अभिव्यक्त किये थे । विवेचन प्रवृत्ति के लिए गद्य को महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है । नर्मद गुजराती साहित्य का पहला आलोचक है, जिसने अपने साहित्यिक विचारों को गद्य में अभिव्यक्त किया । नर्मद ने साहित्य का सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुसंधान (-) विवेचन करने के लिए अपने परवर्ती आलोचकों के लिए एक नया रास्ता खोल दिया । नर्मद के विवेचन साहित्य की अनेक सीमाओं के बावजूद गुजराती साहित्य में उसका महत्त्वपूर्ण योगदान है । नर्मद के स्वभाव में उत्साह और उसे किसी भी ढंग से व्यक्त करने की छटपटाहट देखी जा सकती हैं । और इसी उत्साह के कारण वह इतनी सूक्ष्म और मार्मिक आलोचना कर सका ।[५] उसके इस उत्साह के कारण ही उसकी आलोचना साहित्य के क्षेत्र में फली-फूली हैं, व्यापक बनी है । इस दृष्टि से नर्मद को गुजराती साहित्य का प्रथम आलोचक कहना उचित ही है ।

गुजराती आलोचना में शास्त्रीय ढंग से आलोचना करने वाले नवलराम ने साक्षरयुगीन आलोचना के लिए नर्मद युग में ही पूर्वपीठिका तैयार कर दी थी । साक्षर युग में गुजराती आलोचना अधिक प्रौढ़ होती हुई नजर आती है । नवलराम के बाद साक्षरयुग के आलोचकों में मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, नरसिंहराव दिवेटिया, रमणभाई नीलकंठ, आनंदशंकर ध्रुव एवं बलवंतराय कल्याणराय ठाकोर ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने काव्य एवं साहित्य के बारे में गंभीर विश्लेषण किया, यद्यपि इनमें से अधिकांश भारतीय काव्यशास्त्र के गंभीर अध्येता रहे हैं लेकिन सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रति विशेष झुकाव दृष्टिगोचर होता है । नर्मद युग के नवलराम के बाद सैद्धांतिक आलोचना के साथ व्यावहारिक आलोचना साक्षरयुग में ध्यान आकर्षित करती है । इन आलोचकों ने मध्यकालीन एवं अर्वाचीन गुजराती साहित्य पर गंभीर लेख लिखे । अकेले 'सरस्वतीचंद्र' पर साक्षरयुग के समीक्षकों की टिप्पणियाँ इस युग के आलोचकों के युगधर्म एवं साहित्य के प्रति गंभीर निष्ठा का परिचय देती है ।

गाँधीयुगीन आलोचकों में रा.वि. पाठक का महत्वपूर्ण स्थान है । नर्मदयुग में आरंभ होनेवाली गुजराती

आलोचना साक्षरयुग में व्यापक रुप धारण करती हुई, गांधीयुग में रा.वि. पाठक के हाथों परिपक्व बनती है । संस्कृत काव्यशास्त्र और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के गहन अध्ययन से उनकी सैद्धांतिक चर्चा अधिक परिष्कृत हुई है । उन्होंने भारतीय काव्यशास्त्र का आधार ग्रहण करके अपने स्वतंत्र और मौलिक साहित्यिक मानदंडों की स्थापना की । रा.वि. पाठक गुजराती आलोचना के पहले ऐसे आलोचक हैं जिन्होंने पश्चिमी साहित्य सिद्धांतों का उपयोग भारतीय काव्यशास्त्र के समर्थन के लिए किया ।[६]

गुजराती आलोचना में रा.वि. पाठक की आलोचना की लगभग वैसी ही भूमिका है, जो हिन्दी आलोचना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की है । जिस प्रकार आचार्य शुक्ल ने लोकमंगल सिद्धांत के आधार पर साहित्य को जीवन के साथ जोड़ा है, उसी प्रकार रा.वि. पाठक ने भी गांधीविचार से प्रभावित होकर साहित्य को जीवन के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण काम किया । दोनों ही आलोचकों ने पूर्व और पश्चिम के सिद्धांतों का अध्ययन किया था, परंतु दोनों आलोचकों ने उनकी अपनी भाषा की आवश्यकता के आधार पर साहित्य में उसे स्थान दिया । इन दोनों ही आलोचकों का उनकी अपनी भाषा पर व्यापक प्रभाव पड़ा, जिसका विकास उनकी परवर्ती समीक्षा में देखा जा सकता है । अतः कहा जा सकता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं रा.वि. पाठक ने हिन्दी और गुजराती आलोचना में भारतीय और पाश्चात्य साहित्य सिद्धांतों की सहायता लेकर हिन्दी और गुजराती आलोचना का स्वरूप बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

संदर्भ सूची

१. शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य साहित्यिक अवधारणाओं का प्रभाव, पृ.६०

२. हिन्दी आलोचना, पृ.१८

३. हिन्दी आलोचना का विकास, पृ.३५

४. हिन्दी आलोचना का सैद्धांतिक आधार, पृ.२२८

५. आपणुं विवेचन साहित्य, पृ. ८

६. गुजराती साहित्यनो इतिहास, भाग-३, पृ.३८४

❑